अध्याय प्रथम

अध्याय प्रथम – शोध परिचय

1.1. प्रस्तावनाः–

" शिक्षक की भूमिका और रणनीति":

"शिक्षक बुनियादी रूप से इस जगत में सबसे बड़ा विद्रोही व्यक्ति होना चाहिये। तब वह पीढ़ियों को आगे ले जायेगा। और शिक्षक सबसे बड़ा दकियानूस है, सबसे बड़ा ट्रेडिशनलिस्ट वही है, वही दोहराया जाता है पुराने कचरे को। कांति शिक्षक में होती नहीं है। आपने सुना है कि कोई शिक्षक कांतिपूर्ण हो। शिक्षक सबसे ज्यादा दकियानूस, सबसे ज्यादा आर्थोडॉक्स है, इसलिये शिक्षक सबसे खतरनाक है। समाज उससे हित नहीं पाता है, अहित जाता है। शिक्षक होना चाहिये विद्रोही–कौन–सा विद्रोही? मकान में आग लगा दें आप, या कुछ और कर दें या जाकर ट्रेन उलट दें या बसों में आग लगा दें,शोधकर्ता उनको नहीं कह रहा हूं, गलती से वैसा न समझ लें।शोधकर्ता कह रहा है कि हमारी जो वैल्यू हैं उनके विद्रोह का रूख, विचार का रूख होना चाहिये कि यह मामला क्या है।

जब आप एक बच्चे को कहते हैं कि तुम गधे हो, तुम नासमझ हो, तुम बुद्धिहीन हो, देखो उस दूसरे को, वह कितना आगे है, तब आप विचार करें कि यह कितने दूर तक ठीक है और कितने दूर तक सच है। क्या दुनिया में दो आदमी एक जैसे हो सकते हैं? क्या यह संभव है जिसको आप गधा कह रहे हैं वह वैसा हो जायेगा जैसा कि आगे खड़ा है। क्या यह आज तक संभव है? हर आदमी जैसा है, अपने जैसा है, दूसरे आदमी से कंपेरीजन का कोई सवाल ही नहीं। किसी दूसरे आदमी से उसकी कोई कंपेरीजन नहीं उसकी तुलना नहीं।

एक छोटा कंकड़ है वह छोटा कंकड़ है, एक बड़ा कंकड़ है वह बड़ा कंकड़ है, एक छोटा पौधा है वह छोटा पौधा है , एक बड़ा पौधा है वह बड़ा पौधा है। एक घांस का फूल है ,वह घांस का फूल है, एक गुलाब का फूल है वह गुलाब का फूल है। प्रकृति का जहां तक संबंध है, घास के फूल पर प्रकृति नाराज नहीं है और गुलाब के फूल पर प्रसन्न नहीं है। घास के फूल को भी प्राण देती है उतनी खुशी से जितनी गुलाब के फूल को देती है। और मनुष्य को हटा दें तो घास के फूल और गुलाब के फूल में कौन छोटा बड़ा है ? कोई छोटा या बड़ा नहीं है। घास का तिनका और बड़ा भारी चीढ़ का दरख्त तो यह महान है और घास का तिनका

छोटा है? तो परमात्मा कभी भी घास के तिनके को समाप्त कर देता और चीड़—चीड़ के दरख्त रह जाते दुनिया में, नहीं लेकिन आदमी की वैल्यूज गलत है।

यह आप स्मरण रखें कि इस संबंध में आपसे कुछ गहरी बात कहने का विचार रखता हूं। वह यह कि जब तक दुनिया में हम एक आदमी को दूसरे आदमी से कंपेयर करेंगे तब तक हम गलत रास्ते पर चलते रहेंगे। वह गलत रास्ता यह होगा कि हम हर आदमी में दूसरे आदमी जैसा बनने कि इच्छा पैदा करते हैं, जबकि कोई आदमी न तो दूसरे जैसा बना है, और न बन सकता है।

राम को मरे कितने दिन हो गये , या काइस्ट को मरे कितने दिन हो गये, दूसरा क्राइस्ट क्यों नहीं बन पाता और हजारों हजारों क्रिश्चियन कोशिश में तो चौबीस घंटे लगे हैं कि क्राइस्ट बन जायें। हजारों राम बनने की कोशिश में कर रहे हैं, हजारों जैन, महावीर , बुद्ध बनने की कोशिश शोधकर्ता कर रहे हैं, लेकिन बनते क्यों नहीं एकाध? एकाध दूसरा क्राइस्ट पैदा क्यों नहीं होता? क्या इससे आंख नहीं खुल सकती आपकी? में रामलीला के रामों की बात नहीं कह रहा हूं जो रामलीला में बनते हैं राम। न आप यह समझ लें कि उनकी चर्चा कर रहा हूं। वैसे तो कई लोग राम बन जाते हैं, कई लोग बुद्ध जैसे कपड़े लपेट लेते हैं और बुद्ध बन जाते हैं। कई लोग महावीर जैसा कपड़ा लपेट लेते हैं या नग्न हो जाते हैं और महावीर बन जाते हैं। शोधकर्ता उनकी बात नहीं कर रहा वे सब रामलीला के राम हैं, उनको छोड़ दें। लेकिन राम कोई दूसरा पैदा होता है?

यह आपको शोधकर्ता की जिंदगी से भी पता चलता है कि ठीक एक आदमी जैसा दूसरा आदमी कोई हो सकता है? एक कंकड़ जैसा दूसरा कंकड़ भी पूरी पृथ्वी पर खोजना कठिन है। यहां हर चीज यूनिक है और हर चीज अद्वितीय है। और जब तक कि हम प्रत्येक अद्वितीय प्रतिभा को सम्मान नहीं देंगे तब तक दुनिया में प्रतियोगिता रहेगी, प्रतिस्पर्धा रहेगी, तब तक मारकाट रहेगी, तब तक दुनिया में हिंसा रहेगी , तब तक दुनिया में सब बेईमानी के उपाय से आदमी आगे होना चाहेगा, दूसरे जैसा होना चाहेगा। जब हर आदमी दूसरे जैसा होना चाहता है तो क्या होता है? फल यह होता है कि अगर एक बगीचे में सब फूलों का दिमाग फिर जाये या बड़े बड़े शिक्षक वहां पहुंच जायें और उनको समझायें कि देखो चमेली का फूल चंपा जैसा हो जाये और चंपा का फूल जूही जैसा , क्योंकि देखो जूही कितनी सुंदर है, और सब फूलों में पागलपन आ जाये हालांकि आ नहीं सकता । क्यों कि फूल आदमी से पागल फूल नहीं है। आदमी से ज्यादा जड़ता उन में नहीं है कि वे चक्कर में पड़ जायें शिक्षकों के उपदेशकों के , सन्यासियों के,

आदर्शवादियों के साधुओं के चक्कर में कोई फूल नहीं पड़ेगा। लेकिन फिर भी समझ लें और कल्पना कर लें कि कोई आदमी जाये और समझाये उनको तथा वे चक्कर में आ जायें और चमेली का फूल होने लगे तो क्या उस बगिया में। उस बगिया में फूल फिर पैदा नहीं हो सकते। उस बगिया में फिर पौधे मुरझा जायेंगे, क्यों कि चंपा लाख उपाय करे तो चमेली नहीं हो सकती वह उसके स्वभाव में नहीं है, वह उसके व्यक्तिवत में नहीं है, वह उसकी प्रकृति में नहीं है। चमेली तो चंपा हो ही नहीं सकती।

लेकिन क्या होगा? चंपा होने की कोशिश में चमेली भी नहीं हो पायेगी। वह जो हो सकती थी उससे भी वंचित हो जायेगी।

मनुष्य के साथ दुर्भाग्य हुआ है सबसे बड़ा दुर्भाग्य और अभिशाप जो मनुष्य के साथ हुआ है वह यह कि हर आदमी किसी और जैसा होना चाह रहा है और कौन सिखा रहा है यह ? यह षडयंत्र कौन कर रहा है यह हजार हजार साल से शिक्षा कर रही है। वह कह रही है राम जैसे बनो , बुद्ध जैसे बनो। यह अकर पुरानी तस्वीर फीकी पड़ गई तो गांधी जैसे बनो , विनोबा जैसे बनो। किसी ने किसी जैसा बनो लेकिन अपने जैसा बनने की भूल मत करना क्यों कि तुम तो बकार पैदा हुये हो। असल में तो गांधीजी मतलब से पैदा हुये। भगवान ने भूल की जो आपको पैदा किया। क्यों कि अगर भगवान समझदार होता तो राम और बुद्ध ऐसे कोई दस पंद्रह आदमी के टाइप पैदा कर देता दुनिया में। या कि बहुत ही समझदार होता, जैसा कि सभी धर्मो के लोग बहुत ही समझदार होते हैं। तो फिर एक ही तरह के टाइप पैदा कर देता। फिर क्या होता ?

अगर दुनिया में समझ लें कि तीन अरब राम ही राम हैं तो कितनी देर चलेगी दुनिया ? पंद्रह मिनट ने स्युसाइड हो जायेगा। सारी दुनिया आत्मघात कर लेगी। इतनी बोरडम पैदा होगी राम की को देखने से। सब मर जायेगा , कभी सोचा है? सारी दुनिया में गुलाब ही गुलाब के फूल हो जायें और सारे पौधे गुलाब के फूल पैदा करने लगें तो क्या होगा? फूल देखने लायक भी नहीं रह जायेंगे। उनकी तरफ आंख करने की जरूरत भी नहीं रह जायेगी। यह व्यर्थ नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति का अपना व्यक्तित्व होता है , यह गौरवशाली बात है कि आप किसी दूसरे जैसे नहीं हैं। और कंपेरीजन कि कोई उंचा है कोई नीचा है, नासमझी की बात है कोई उंचा और कोई नीचा नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी जगह है। और प्रत्येक व्यक्ति दूसरा अपनी जगह पर। नींचे ऊंचे की बात गलत है। सब तरह का वैल्यूएशन गलत है। लेकिन हम यह सिखाते रहे।

विद्रोह से मेरा मतलब है, इस तरह की सारी बातों पर विचार, इस तरह की सारी बातों पर विवके, इस तरह की एक एक बात को देखना की शोधकर्ता क्या सिखा रहा है, इन बच्चों को जहर तो नहीं पिला रहा है? बड़े प्रेम से भी जहर पिलाया जा सकता है और बड़े प्रेम से मां–बाप और शिक्षक जहर पिलाते रहे हैं, लेकिन यह टूटना चाहिये।

1.2. "5 ई क्या हैं?

संलग्न, अन्वेषण, व्याख्या, विस्तृत और मूल्यांकन, 5 ई शिक्षण और सीखने के लिये एक दृश्य के पांच चरणों का प्रतिनिधित्व करते हैं। 5 ई के आधार पर एक अनुदेशात्मक मॉडल सीखने करने के लिये रचनात्मक दृष्टिकोंण शिक्षार्थ अपने पुराने विचारों के शीर्ष पर नये विचारों का निर्माण करना है जो 5 ई. के वयस्कों सहित सभी उम्र के छात्रों के साथ इस्तेमाल किया जा सकता है। 5 ई. के प्रत्यके सीखने के एक चरण का वर्णन करता है और प्रत्येक चरण के अक्षर 'ई' के साथ शुरू होता है। संलग्न अन्वेषण समझाओ विस्तृत और मूल्यांकन 5 ई के छात्रों और शिक्षकों को आम गतिविधियों का अनुभव या उपयोग करने के लिये पूर्व ज्ञान अनुभव अर्थ निर्माण के लिये लगातार एक अवधारणा की समझ का आकलन करने के लिये अनुमति देना है।

संलग्न : 5 ई के इस चरण की प्रकिया शुरू होती है । एक " संलग्न" गतिविधि के निम्न कार्य करना चाहिये – अतीत और वर्तमान के कनेक्शन के बीच गतिविधियों से सीखने के अनुभव की आशा है । और वर्तमान गतिविधियों के सीखने के परिणामों पर छात्रों की सोच को ध्यान केन्द्रित किया गया है। छात्रों को मानसिक रूप से अवधारणा प्रकिया या सीखे हुये कौशल में लगे होना चाहिये।

अन्वेषण : 5 ई के इस चरण में अनुभवों को एक आम आधार के साथ छात्रों को प्रदान करता है। वे पहचान और अवधारणाओं , प्रकियाओं और कौशल विकसित करते हैं। इस चरण के दौरान छात्र सकिय रूप से अपने पर्यावरण का पता लगाते हैं।

व्याख्या : इस चरण में समझाने के उद्देश्य यह हैं कि छात्रों ने अब तक क्या सीखा और संवाद के लिये इस चरण का क्या मतलब यह पता लगाने के लिये एक अवसर छात्रों को प्रदान करता है वे अपनी अवधारणाओं को समझने की किया के लिये या नये कौशल या व्यवहार का प्रदर्शन करने के अवसर प्राप्त करते हैं। इस चरण में अवधारणाओं, प्रकियाओ, कौशल या व्यवहार के लिये औपचारिक शब्दों,

क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, Regional Institute of Education पुस्तकालय Library

परिभाषाओं और स्पष्टीकरण को पेश करने के लिये शिक्षक अवसर प्रदान करता है।

विस्तृत :– 5 ई के इस चरण में छात्रों को अवधारणाओं को समझने का अवसर प्रदान करता है। और उन्हें कौशल और व्यवहार का अभ्यास करने के लिये अनुमति देता है। नये अनुभव के माध्यम से शिक्षार्थी प्रमुख अवधारणाओं की गहरी और व्यापक समझ विकसित करने , हित के क्षेत्रों के बारे में और अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिये, और अपने कौशल को निखारने के लिये अवसर प्राप्त करते हैं। दुनिया में अपनी सहमति को लागू करने के लिये उनके आसपास के नये तरीके से नासा के क्षेत्र में छात्रों का विस्तार और नये, अपरिचित स्थितियों के लिये क्या सीखते हैं। यह लागू करने में मदद करता है।

मूल्यांकन – 5 ई के इस चरण में उनकी समझ और क्षमताओं का आंकलन करने के लिये शिक्षार्थियों को प्रोत्साहित करती है। और शिक्षकों को महत्वपूर्ण अवधारणाओं और कौशल के विकास के लिये छात्रों की समझ का मूल्यांकन कर सकते हैं। छात्र पत्रिकाओं , ड्राईंग मॉडल और अपने प्रदर्शन की कार्यों के माध्यम से अपनी समझ का प्रदर्शन करने के लिय प्रोत्साहित किये जाते हैं।

1.3. रचनावादी –

John Dewey (1859 – 1952)

Maria Montessory (1870 – 1952)

Wladyslaw Strzeminski (1895 – 1952)

Lev Vygatsky (1896 – 1934)

Jean Paiget (1896 – 1980)

Geore Kelly (1905 – 1967)

Heing Von Foerster (1911 – 2002)

Ernst Von Glaserfeld (1917 – 2010)

Paul Watzlawick (1921 – 2007)

Edgar Marin (1921)

Humberto Garai (1935)

David A. Kolb (1989)

1.4. वियाजे का रचनावाद –

Jean Paiget (1896 – 1980) के अनुसार अधिगम की अभिप्रेरणा हेतु प्राथमिक आवश्यकता वातावरण से समायोजन है। लगातार अंतः क्रिया स्कीमास एसिमिलेशन, एकोमोडेशन एवं इक्विलिविरयम नए अधिनियम को जन्म देते हैं। पियाजे ने मनोवैज्ञानिक विकास के लिए चार अवस्थाओं को स्पष्ट किया है –

1- इन्द्रियजनित गामक अवस्था (2 वर्ष की आयु तक) – इस अवस्था में बालक अपने चारों ओर के वातावरण की अपनी ज्ञानेन्द्रियों के अनुभवों के माध्यम से ही जानते हैं।

2- पूर्व संक्रियात्मक अवस्था (2 वर्ष से 7 वर्ष की आयु के मध्य) – इस अवस्था में बालक में संप्रत्यय निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

3- मूर्त संक्रियात्मक अवस्था (7 वर्ष से 11 वर्ष की आयु के मध्य) – इस अवस्था में बच्चों का चिन्तन अधिक क्रमबद्ध एवं तर्क संगत होना प्रारम्भ कर देता है।

4- अमूर्त संक्रियात्मक अवस्था (11 वर्ष से 15 वर्ष की आयु के मध्य) – इस अवस्था में संशलेषण विश्लेषण नियमीकरण तथा सूक्ष्म सिद्धांतों की स्थापना की स्थापना संबंधी उच्च मानसिक क्षमताओं का समुचित विकास होता है।

पियाजे का सिद्धांत खोज पर आधारित है, जिसके अनुसार बच्चों को उचित वातावरण उपलब्ध करवाना चाहिए। जिससे अधिगम अर्थपूर्ण हो सके और बच्चों को अपनी क्षमता के अनुसार ज्ञान निर्मित करने की स्वतंत्रता दी जानी चाहिए। इनके अनुसार रचनावादी कक्षा में विद्यार्थी को प्रमुख मानते हुए उन्हें अलग–अलग गतिविधियाँ करने का अवसर प्रदान करना चाहिए, जिससे वे अपनी समझ के अनुसार ज्ञान निर्मित कर सकें।

1.5. स्कूलों में सामाजिक विज्ञान की स्थिति

आनद्रे बैटील के अनुसार :-

आज सामाजिक विज्ञान विषय देश भर के स्कूलों मे किसी न किसी रूप में पढ़ाए जा रहे हैं। पहले आम तौर पर ऐसी स्थिति नहीं थी। आजादी के पहले समाजशास्त्र, राजनीति विज्ञान और यहाँ तक कि अर्थशास्त्र की शिक्षा भी मुख्य रूप से विश्वविद्यालयों व महाविद्यालयों तक सीमित थी। आजादी के बाद सामाजिक विज्ञान के विषयों की शिक्षा में निरन्तर विस्तार हुआ तथा जल्दी ही इन्हें स्कूलों मे पढाए जाने की माँग भी बढ़ने लगी।

सामाजिक विज्ञान का वर्णन कभी कभी नीति विज्ञान के रूप में किया जाता है हालाँकि नीति निर्धारण में समाजशास्त्र और राजनैतिक विज्ञान जैसे विषयों का योगदान परोक्ष व सीमित ही रहता है। वैसे भी स्कूली विद्यार्थियों को नीति निर्माता या फिर नीति निर्माण में परामर्शदाता बनाने का लक्ष्य रखना अपने आप में बहुत ही अव्यावहारिक बात होगी। पर अर्थव्यवस्था राजनीति और समाज किस तरह काम करते हैं इसके बारे में सामान्य जानकारी होने से विद्यार्थियो को उनकी आगे की जिन्दगी में यह समझने में मदद मिलेगी कि सार्वजनिक जीवन में नीतियों की क्या भूमिका होती है।यह उन्हें इस बारे में एक शिक्षित दृष्टिकोंण बनाने का आधार प्रदान कर सकता है कि कुछ खास नीतियां ही क्यों अपनाई जाती हैं और अन्य क्यों नहीं। साथ ही अपनाई जाने वाली नीतियों मे से कुछ ही सफल होती हैं और बाकी क्यों नहीं।

मेरा दृष्टिकोंण यह है कि सामाजिक विज्ञान का ज्यादा महत्वपूर्ण योगदान नीति निर्धारण के लिए प्रशिक्षित करने में नहीं है बल्कि शिक्षित व समझदार नागरिक तैयार करने में है। लोकतंत्र के अच्छे संचालन के लिए शिक्षित या रसायनशास्त्र पढाने वाले शिक्षकों को आने वाली समस्याओं की तुलना में काफी अलग हो जाती है। और इस तथ्य पर स्कूलो के लिए नीति निर्धारण प्रकिया के शीर्ष पर मौजूद लोगों द्वारा पर्याप्त रूप से ध्यान नहीं दिया जाता।

इस समस्या की प्रकृति को शोधकर्ता जरा और खुलकर समझा सकता है। विज्ञान के विषयों से सम्बद्ध मेरे साथी खासतौर पर भौतिकशास्त्री मुझसे कहते हैं कि शोधकर्ता यह कहने में बहुत ज्यादा अतिश्योक्ति करता हूं कि उनके अध्ययन और शोध के क्षेत्रों में काफी हद तक सम्मति है। वे ध्यान दिलाते हैं कि भौतिकी की वर्तमान सीमाओं पर आम सम्मति न के बराबर है। और वाकई में ऐसा है भी तथा

ज्ञान के किसी भी क्षेत्र की सीमाओं पर विद्वानों के विचारों में भिन्नता है बल्कि ऐसा एकदम उसकी बुनियादों में भी है। और यही वह वजह है जिसके कारण स्कूली शिक्षकों के लिए यह विषय पढ़ाना खास तौर पर मुश्किल हो जाता है।

मेरा सौभाग्य था कि शोधकर्ता 7 वीं कक्षा के अध्ययन और शोध के एक प्रमुख केन्द्र में समाजशास्त्र का शिक्षक रहा हूं। नए विद्यार्थियों के सहज हो चुकने के बाद में बिना किसी शंका के उनसे कह पाता था कि हमारे विषय में उत्तर से ज्यादा महत्वपूर्ण प्रश्न होता है। उच्चतर कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए मैनें इस तरह की परीक्षाएं कराने का रिवाज विकसित कर लिया था जहां शोधकर्ता प्रत्येक विद्यार्थी से स्वयं प्रश्न बनाने व उसका उत्तर लिखने को कहता था और उन्हें यह बता देता था कि उनका मूल्यांकन प्रश्न व उत्तर दोनों के आधार पर किया जाएगा। पर विद्यार्थियों ने जल्दी ही मेरे इरादों को भांप लिया और वे विश्वविद्यालय की परीक्षाओं के पिछले प्रश्नपत्रों से प्रश्न और उन प्रश्नों के उत्तर पहले से तैयार करके आने लगे। भारतीय विद्यार्थी किसी भी परीक्षा व्यवस्था के जाल और फन्दों से पार पाने में उस्ताद होते है।

7 वी. कक्षा के विद्यार्थियों को पढ़ाने में मुझे लगा कि कक्षा को यह बताना मेरी जिम्मेदारी है कि अक्सर किसी खास प्रश्न के लिये कोई एक सही उत्तर नहीं होता। शोधकर्ता पक्के तौर पर यह नहीं कह सकता कि उस स्तर पर भी शोधकर्ता अपने सभी विद्यार्थियों को इसका विश्वास दिला पाता था या नहीं। परन्तु 15 या 16 की उम्र में विद्यार्थी यह जानना चाहता है कि किसी सवाल का सही उत्तर क्या है ताकि वह परीक्षाओं में अच्छा कर सके और जीवन में आगे बढ़ सके। भौतिकी का शिक्षक या रसायनशास्त्र का शिक्षक अपनी निष्ठा से समझौता किये बिना समाजशास्त्र या राजनीति विज्ञान के शिक्षक की तुलना में कहीं ज्यादा आसानी से अपने विद्यार्थी को सन्तुष्ट कर सकता है।

विद्यार्थी और शिक्षक दोनों के ही सामने आने वाली परीक्षा प्रणाली की बाध्यतायें दूर करने की मन में इच्छा भर होने से उन्हें समाप्त नहीं किया जा सकता। ये बाध्यतायें समाजशास्त्र जैसे विषय के शिक्षण में गम्भीर विकृतियां पैदा कर सकती हैं। विद्यार्थी और शिक्षक दोनों ही खुद को इस परीक्षा प्रणाली का शिकार मानते हैं। वस्तुतः उनका बहुत थोड़ा ही नियंत्रण इस तंत्र पर है जिसे समय–समय पर सुधारने की कवायदें ऐसे तरीकों से की जाती है जो उन में से अधिकांश को मनमाने सनक भरे और अबूझ लगते हैं।

परीक्षाओं को इतने बड़े स्तर जिससे लगता है कि हम बच नहीं सकते पर आयोजित करने की मजबूरियां न केवल परीक्षा प्रश्नों व उनके अपेक्षित उत्तरों के मानकीकरण बल्कि शिक्षण और पाठ्यपुस्तकों जो शिक्षण का आधार होती हैं के लेखन के मानकीकरण के लिये भी अनवरत दबाब पैदा करती हैं। कुछ विषयों के लिये मानकीकरण अन्य विषयों की तुलना में ज्यादा सफल साबित होता है। सामाजिक विज्ञानों के शिक्षक व परीक्षक प्राप्तांकों में निरन्तर बढ़ोत्तरी होते जाने के चलन में जो कि परीक्षा प्रणाली का एक आम लक्षण बन चुका है, पीछे नहीं छूटना चाहते। और इस वनज से सामाजिक विज्ञान में भी परीक्षाओं व शिक्षण का तरीका अपरिहार्य रूप से उस नमूने का अनुसरण करने लगता है जिसे सबसे पहले प्राकृतिक विज्ञानों में लागू किया गया था। और जो ठीक ठाक काम करता हुआ प्रतीत होता है। इससे वे विरोधाभास और अनिश्चितायें दूर हो जाती हैं जो सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक जीवन के केन्द्र में मौजूद रहती हैं।

स्कूली बच्चों को दी जाने वाली सामाजिक विज्ञान की शिक्षा एक अन्य कारण से जटिल बन जाती है जिसे इन विषयों में मौजूद मूल्यों की समस्या कहा जा सकता है। मूल्यों पर आधारित निर्णयों को वास्तविकता पर आधारित निर्णयों से अलग करना या कैसा होना चाहिये वाले सवालों को कैसा है वाले सवालों से अलग करना – प्राकृतिक विज्ञानों के समक्ष उतनी बड़ी चुनौती खड़ी नहीं करता जितनी कि सामाजिक विज्ञान के समक्ष करता है।

समाजिक विज्ञान में जटिल, अव्यवस्थित और तरल तथ्यों का अध्ययन शामिल रहता है। किसी भी विज्ञान के लिये जरूरी होता है कि तथ्य जैसे हैं उन्हें सम्मानपूर्वक वैसे ही स्वीकार करके उनके साथ काम किया जाये। चाहे वे तथ्य प्रकृति से संबंधित हों या समाज से। प्राकृतिक विज्ञानों में तथ्यों के प्रेक्षण , व्याख्या और विश्लेषण को व्यावहारिक बुद्धि और जन भावनाओं के दबावों से अलग रखना अपेक्षाकृत आसान होता है। पर जब हम समाज , राजनीति और अर्थव्यवस्था पर काम करते हैं। तो मामला इतना सरल नहीं रह जाता। हमारी व्यक्तिगत पसंद हमारे दृष्टिकोंणों और हमारे द्वारा किये जाने वाले तथ्यों के उन निरूपणों में प्रवेश कर जाती है जिनके साथ हमारा काम जुड़ा होता है। सामाजिक विज्ञान ने तथ्यों के साथ वस्तुनिष्ठ और व्यवस्थित ढंग से निपटने के अपने खुद के तरीके विकसित कर लिये हैं। ये तरीके प्राकृतिक विज्ञानों में इस्तेमाल किये जाने वाले तरीकों से भिन्न हैं। पर इसका यह मतलब नहीं है कि प्रासंगिक तथ्यों के प्रेक्षण, व्याख्या और विश्लेषण के बजाय अपनी खुद की व्यावहारिक बुद्धि या खुद की व्यक्तिगत पसंद

क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, भोपाल
Regional Institute of Education
पुस्तकालय
Library

को इस्तेमाल करने के मामले में समाज विज्ञानी, प्राकृतिक विज्ञानी की तुलना में किसी भी तरह से ज्यादा स्वतंत्र हैं, चाहे बात शिक्षण की हो या शोध की ।

सामाजिक विज्ञान में भी परीक्षाओं व शिक्षण का तरीका अपरिहार्य रूप से उस नमूने का अनुसरण करने लगता है। जिसे सबसे पहले प्राकृतिक विज्ञानो में लागू किया गया था और जो वहां ठीक ठाक काम करता हुआ प्रतीत होता है। इससे वे विरोधाभास और अनिश्चिततायें दूर हो जाती हैं जो सामाजिक राजनैतिक और आर्थिक जीवन के केन्द्रशोधकर्ता मौजूद रहती हैं।

शिक्षित भारतीयों में उपदेश देने की एक प्रबल आंतरिक प्रेरणा काम करती हैं और अपने अनुभव से में यह कह सकता हूं कि यह प्रेरणा खाततौर पर शिक्षकों में ज्यादा गहरी होती है। परन्तु उपदेश देना किसी भी तरह से विज्ञान , चाहे प्राकृतिक विज्ञान या सामाजिक, की पद्धतियों के अनुसार व्याख्या और विश्लेषण करने के ढंग की जगह नहीं ले सकता। यहां पर , विज्ञान के इन दो प्रकारों के बीच अन्तर है। भौतिकी का शिक्षक इलैक्टान एवं प्रोटोन पढ़ाते समय या रसायन शास्त्र का शिक्षक अम्लों एवं क्षारों के बारे में पढ़ाते समय शायद ही कभी उपदेश देने के अपनी प्रेरणा में बह सकता हो। जबकि दूसरी तरफ, सामाजिक विज्ञानों के शिक्षकों को अक्सर यह लगता है कि परिवार, नौकरशाही या खुले बाजार के बारे में पढ़ाते समय उन्हें उपदेश देने की स्वतंत्रता होती है। परिणामस्वरूप अक्सर उन में अपनी पसंदों और पूर्वाग्रहों को एक न्यायसंगत समाज के मूल्यों के रूप में पेश करने की प्रवृत्ति होती है। इसके चलते कुछ विद्यार्थियों को चीजें अस्पष्ट ही रह जाती हैं। जबकि कुछ दुराग्रही हो जाते हैं।

कुछ लोग मानते हैं कि सामाजिक विज्ञान के शिक्षकों के ऊपर अपने शिष्यों के भीतर सही मूल्यों के बीज बोने और उनका पोषण करने की विशेष जिम्मेदारी है। हालांकि यह स्पष्ट नहीं है कि उन्हें यह करना कैसे है, क्या उन्हें इसे सामाजिक तथ्यों की व्याख्या और विश्लेषण से अलग रखकर करना चाहिये या फिर उसे इसी प्रकिया का एक अभिन्न हिस्सा मानना चाहिये। एक खास तरह के नैतिक मूल्यों को समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था की व्याख्या और विश्लेषण में शामिल कर लेना बेहद मुश्किल कार्य है जिसकी छिपी हुई कठिनाईयों को हल्के ढंग से नहीं लेना चाहिये। मेंने पहले सामाजिक विज्ञान में पद्धतियों और सिद्धांतों से संबंधित मसलों में मतभेद होने का जिक किया था। किन बातों को सर्वश्रेष्ठ मूल्य माना जाना चाहिये, इस सवाल पर यह मतभेद चरम पर पहुंच सकता है।

निःसंदेह, भारत के संविधान में कुछ निश्चित बुनियादी मूल्यों को शामिल किया गया है। शिक्षकों द्वारा इन मूल्यों की प्रकृति और उनके महत्व को सभी विद्यार्थियों को समझाया जाना चाहिये और उन्हें प्रेरित किया जाना चाहिये कि वे इन मूल्यों को अपने जीवन में चरितार्थ करें। पर संविधान में इन बुनियादी मूल्यों को बेहद वृहद और व्यापक शब्दावली में निर्धारित किया गया है। जब हम ब्यौरों तथा वर्णनों में पहुंचते हैं असली मतभेद तब उभरकर सामने आन शुरू होते हैं। जैसा कि कहा जाता है, शैतान बारीकियों के विस्तार में ही छिपा रहता है।

क्या में देश भर में सभी स्कूली विद्यार्थियों की शिक्षा के लिये संविधान के ढांचे के अंतर्गत मूल्यों में एक अकेले वर्ग को विस्तार से समझाने हेतु परिश्रम करना चाहिये, में इस बारे में बिल्कुल निश्चिन्त नहीं हूं कि हम उदारवादी लोकतंत्र के बुनियादी आदर्श अर्थात मूल्यों की विविधता, जिस में अच्छे समाज की विविध अवधारणायें हैं, के लिये सहिष्णु वातावरण सुनिश्चित करना – का उल्लंघन किये बगैर इस दिशा में कितनी दूर जा सकते हैं। या ह में कितनी दूर आना चाहिये। यदि में भारतीय परम्परा की किसी बात पर वाकई में गौरवान्वित महसूस करना चाहिये और उसे संजोकर रखना चाहिये तो वह देश भर के लोगों में व्याप्त जीवन की विविध शैलियों के प्रति उसकी सहिष्णुता है। सामाजिक विज्ञानों के माध्यम से मूल्य आधारित शिक्षा को बढ़ावा देने के हमोर अतिरेक भरे जोश के द्वारा इस भावना का अवमूल्यन नहीं होना चाहिये।

जब हम पूरे भारतीय समाज की बात करते हैं तो सामाजिक प्रथाओं और सामाजिक मूल्यों की विविधता के मुद्दे पर जोर दिया जाना जरूरी है। भारत एक विराट समाज है जहां भाषाओं , धर्मों , जनजातियों , जातियों , सम्प्रदायों, संघों और दलो की बहुतायत है। इस विराट और जटिल समाज के किसी न किसी वर्ग की भावनाओं को ठेस पहुचाये बगैर एक ही प्रकार के मूल्यों को बढ़ावा देना या अच्छे समाज के बारे में केवल एक ही अवधारणा की वकालत करना ऐसा कठिन काम है जिसे शायद ही कोई प्रभावशाली व व्यवहारकुशल ढंग से निभा पाये।

अन्त में में उसी अवलोकन पर वापस आता हूं जिससे मैंने शुरूआत की थी , अच्छा नागरिक बनाने की शिक्षा में सामाजिक विज्ञान के शिक्षण का योगदान । अच्छे नागरिक बनाने की तैयार करने हेतु स्कूली छात्रों को शिक्षित करने के लिये सबसे पहले तो यह जरूरी है कि उन्हें सामाजिक व प्राकृतिक दुनिया के बारे में स्पष्टता से , व्यवस्थित ढंग से और वस्तुनिष्ठ तरीके से सोचने के लिये प्रोत्साहित किया जाये। इसके आगे सामाजिक विज्ञान में यह जरूरी है कि उन्हें विभिन्न तरह की

आर्थिक, राजनैतिक, और सामाजिक व्यवस्थाओं के बारे में इस ढंग से थोड़ी जानकारी और समझ दी जाये कि उत्साही शिक्षकों और पाठ्यपुस्तीय लेखकों की पसन्दों और पूर्वाग्रहों के सामने, लक्ष्यों की व्याख्या और विश्लेषण न हो जायें।

अन्त में यदि हम मानते हैं कि विविधता हमारी सबसे बड़ी धरोहर है तो में अपने विद्यार्थियों को इस विविधता में गहरी रूचि लेने और उसकी कीमत समझने के लिये प्रोत्साहित करना चाहिये। यहां नागरिकता की शिक्षा में हमारे छात्रों को अपना जीवन जीने के तरीकों की जांच परख करने का रूख विकसित करने और जीवन जीने के दूसरे तरीकों के प्रति सहिष्णु रवैया अपनाने के लिये प्रोत्साहित करना ही सामाजिक विज्ञानों का सबसे महत्वपूर्ण योगदान होगा।

1.6. वायगॉट्स्की का रचनावाद –

Lev Vygatsky (1896 – 1934) का रचनावादी सिद्धान्त सामाजिक सिद्धान्त सामाजिक रचनावाद के नाम से प्रसिद्ध है। इनका मानना था कि अधिगम एवं विकास एक साथ घटित होती है, जिससे बच्चों को संज्ञानात्मक विकास सामाजिकरण एवं शिक्षा के संदर्भ में होता है। बच्चों का प्रत्यक्षीकरण ध्यान और उनकी याद्दाश्त की क्षमता उनके संज्ञानात्मक उपकरणों के द्वारा परिवर्तित होती है। ये संज्ञानात्मक उपकरण संस्कृति के द्वारा जैसे इतिहास समाज, परम्पराऐं, भाषाऐं और धर्म होते हैं। बच्चा पहले सामाजिक वातावरण के सम्पर्क में आता है। उसके बाद इंटरपर्सनल लेवल पर और उसके पश्चात् उनको आत्मसात् कर अनुभव प्राप्त करता है। शुरूआती और नये अनुभव बच्चों को प्रभावित करते हैं, जिससे वे बाद में नये विचारों को सुगमता से निर्मित कर लेते हैं। चूँकि इनके रचनावाद की सार्थकता संस्कृति एवं समाज के सन्दर्भ में है। इसलिए इनका रचनावाद सामाजिक रचनावाद की सार्थकता संस्कृति एवं समाज के संदर्भ में है। इसलिए इनका रचनावाद, सामाजिक रचनावाद कहलाता है। इनके अनुसार रचनावादी अधिगम वातावरण विद्यार्थी को एकत्रित करने तथा प्रतिक्रिया करने को अभिप्रेरित करता है। इस प्रकार की समूह शिक्षा गलत जानकारी गलत पूर्वानुमान आदि को घटाने में सहायक होती है।

1.7. रचनावादी कक्षा–कक्ष –

1- शिक्षा विद्यार्थी केन्द्रित होनी चाहिए।

2- कक्षा का वातावरण लोकतांत्रिक होना चाहिए।

3- यह संरचित होना चाहिए।

4- प्रत्येक विद्यार्थी को कक्षा में विशेष माना जाना चाहिए।

5- विद्यार्थी को कक्षा में विचारों को व्यक्त करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए।

6- अधिगम रिलेशनशिप शिक्षक एवं छात्र दोनों के लिए महत्वपूर्ण होनी चाहिए।

7- विद्यार्थियों के पूर्व अनुभवों को बताने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

1.8. रचनावाद क्यों महत्वपूर्ण है? –

शिक्षण का पाठ्यक्रम एवं उसकी विधियाँ परिवर्तित होती है। सभी विषयों का क्षेत्र दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। इसलिए विद्यार्थियों के निष्क्रिय रिसीवर से एक्टिव लर्नर बनने की आवश्यकता है। ऐसे में रचनावाद उपागम के प्रयोग से ज्ञान विद्यार्थियों में आत्मसात् हो जाता है। रचनावादी शिक्षण विद्यार्थियों की क्रिएटिव थिंकिंग पर बल करते हुए सीखने को अभिप्रेरित होते हैं।

जिमेलमेन डेनियल एवं हाइड (1993) के अनुसार रचनावाद सभी विषयों में नवीन विचारों का उद्‌गम है। जिससे शिक्षक विद्यार्थियों की सोच को विकसित करता है। तथा उनकी रचनात्मकता को बाहर लाता है। इस प्रकार रचनावाद वर्तमान शिक्षा की आवश्यकता है।

1.9. अध्ययन की आवश्यकता –

शिक्षक शिक्षण में व्यवहार दृष्टिकोण का अनुसरण करते हैं। जिससे शिक्षार्थी निष्क्रिय रिसीवर के रूप में होते हैं। विद्यार्थी केवल शिक्षक द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन करने के लिए मजबूर हो जाते हैं। उनके लिए शिक्षा बोझ बन जाती है। जिसका उपयोग वे अपने जीवन में नहीं कर पाते। यदि शिक्षार्थियों के पिछले अनुभवों के द्वारा उनके ज्ञान का निर्माण किया जाता है, तो वह स्मृति में स्थिर

हो जाता है। विद्यार्थी दृष्टिकोण द्वारा वास्तविक समस्या को हर करने चर्चा करने, प्रश्न पूछने में सक्षम हो सकेंगे? जिससे विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास सही दिशा में संभव हो सकेगा।

बच्चे उसी वातावरण में सीख सकते हैं कि जहाँ यह महसूस हो कि उन्हें महत्वपूर्ण माना जा रहा है। हमारे स्कूल आज भी सभी बच्चों को ऐसा महसूस नहीं करवा पाते। सीखने का वातावरण भय तथा तनाव मुक्त होना चाहिए। बच्चों के अनुभव को ऐसे संसाधनों के रूप में देखा जाए, जिन्हें विद्यालय में जाँचा तथा विश्लेषित किया जाना है। उनकी विविध क्षमताओं को मान्यता मिले, यह माना जाए कि सभी बच्चों में सीखने की क्षमता है और सभी की ज्ञान एवं कौशल तक पहुँच है।

शिक्षक को ही ज्ञान का प्रमुख आधार नहीं माना, बल्कि बालक के वातावरण व व्यवहार दोनों ही प्रमुख हैं। बच्चे अपनी आस–पास की दुनिया में बहुत ही सक्रिय रूप से जुड़े रहते हैं। खोजबीन करते हैं। प्रक्रिया करते हैं। चीज़ों के साथ कार्य करते हैं। इसलिए कक्षा में बच्चों के अनुभवों को लाना तथा उसे पुस्तकीय ज्ञान से जोड़ना ज्यादा प्रभावी होगा।

रचनावाद उपागम से संबंधित साहित्य का पुनरावलोकन करने से ज्ञात होता है। कक्षा 7 के लिए उपागम की प्रभाविकता के संदर्भ में अब तक कोई कार्य नहीं हुआ है। अतः शोध अध्ययन का मुख्य उद्देश्य रचनावाद उपागम की प्रभाविकता को इन क्षेत्रों में देखते हुए यह ज्ञात करना है कि उपागम सामाजिक मिशन उपलब्धि को किस सीमा तक प्रभावित करता है।

1.10. परिभाषिक शब्दावली

रचनावाद उपागम – यह एक शैक्षिक दर्शन है, जो यह मानता है कि –

1- विद्यार्थी अपना ज्ञान स्वयं अपने अनुभव तथा वातावरण द्वारा स्वयं निर्मित करता है।

2- विद्यार्थी सीखने की प्रक्रिया में भागीदारी का मौका मिलने पर ज्यादा तथा रूचि के साथ सीखता है।

3- विद्यार्थी भय रहित वातावरण में ज्यादा तथा सुगमता से सीखता है।

4- विद्यार्थी किसी संकल्पना को सपूर्ण रूप से तथा छोटे–छोटे अंशों के द्वारा सीखता है।

5- पुस्तकीय ज्ञान को वातावरण से जोड़ने पर अधिगम में सुविधा होती है।

6- शिक्षक ही ज्ञान का स्त्रोत नहीं है तथा विद्यार्थी कक्षा में खाली दिमाग से नहीं आता है। वह वातावरण और अनुभव से बहुत सारा ज्ञान कक्षा में लेकर आता है।

यह विचार है कि ज्ञान मानसिक गतिविधि के आधार पर ज्ञाता द्वारा निर्मित महत्वपूर्ण सोच सीखने की एक गतिविधि है, जो इस पर आधारित है कि जिसमें विचारों और दृष्टिकोण अपने पूर्व ज्ञान और अनुभव के आधार पर परीक्षण करके अपने स्वयं के ज्ञान को स्थिति के लिए इन्हें लागू करने के और पूर्व मौजूदा बौद्धिक रचना के साथ नए ज्ञान को एकीकृत करना।

1.11. पारम्परिक विधि –

सामान्यतः विद्यालयों में शिक्षण हेतु व्याख्यान विधि, प्रश्नोत्तर तकनीकि का प्रयोग किया जाता है। इसे परम्परागत् विधि माना जाता है।

शैक्षणिक उपलब्धि –

वर्तमान समय में ज्ञानात्मक विकास के मापन का एक आधार उस व्यक्ति की शैक्षणिक उपलब्धि है। विद्यार्थी किसी विषय वस्तु के ज्ञान तथा समझ को लिखित एवं मौखिक रूप में प्रस्तुत कर सकता है। वह उसकी उपलब्धि कहलाती है।

तार्किक योग्यता –

युक्तिपूर्वक समस्या का समाधान करना तार्किक योग्यता कहलाती है। योग्यता का विकास होने पर आत्मविश्वास में वृद्धि होती है।

1.12. समस्या कथन

चयनित संगठन चर के संदर्भ में कक्षा सातवीं के सामाजिक विज्ञान शिक्षण के लिए 5 ई मॉडल की प्रभावशीलता।